



Neutral Citation No. - 2026:AHC:2274

सुरक्षित दिनांक: 18.12.2025

प्रदत्त दिनांक: 07.01.2026

ए.एफ.आर.

इलाहाबाद उच्च न्यायालय

आपराधिक पुनरीक्षण संख्या - 1352 वर्ष 2024

अशोक सिंह @ काली सिंह

.....पुनरीक्षणकर्ता(गण)

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

..... विपक्षी(गण)

पुनरीक्षणकर्ता(गण) की ओर से अधिवक्ता : राजीव चड्ढा

विपक्षी(गण) की ओर से अधिवक्ता : जी.ए.

कक्ष में

माननीय न्यायमूर्ति क्षितिज शैलेन्द्र

1. पुनरीक्षण में आवेदक के विद्वान अधिवक्ता श्री राजीव चड्ढा और विपक्षीगण के विद्वान ए.जी.ए. को सुना गया।

चुनौती

2. दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 397/401 के अंतर्गत यह पुनरीक्षण याचिका उस आदेश दिनांक 24.01.2024 को चुनौती देते हुए दाखिल की गई है, जिसके द्वारा विद्वान अपर जिला एवं सत्र न्यायाधीश/विशेष न्यायाधीश (भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम), न्यायालय संख्या-1,

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।



गोरखपुर ने सत्र वाद संख्या 95/2024 (राज्य बनाम अशोक सिंह) में आवेदक के विरुद्ध भारतीय दण्ड संहिता की धारा 306 के अंतर्गत आरोप निर्धारित किया। दूसरा चुनौतीपूर्ण आदेश दिनांक 22.10.2021 है, जिसके द्वारा विद्वान अपर मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट-1, गोरखपुर (आगे "मजिस्ट्रेट") ने मामले में संज्ञान लेते हुए आवेदक को तलब किया।

संक्षिप्त तथ्य

3. आवेदक के मामले के अनुसार, 02.03.2020 को गोरखपुर के ज़िला अस्पताल के एक वार्ड बॉय ने पुलिस को सूचना दी कि मुर्दाघर में एक शव रखा हुआ है। उसकी सूचना पर पुलिस मौके पर पहुँची और मृतक, जिसका नाम दीन दयाल सिंह था (जो आवेदक का सगा भाई था), की जेब में एक सुसाइड नोट मिला। तदनुसार, विपक्षी पक्ष संख्या 2, जो गोरखपुर की बेनीगंज पुलिस चौकी का प्रभारी है, ने दिनांक 02.03.2020 को एक प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की, जिसमें यह उल्लेख किया गया कि विवेचना की कार्यवाही के दौरान, मृतक की पैंट की बाईं जेब में एक हस्तलिखित सुसाइड नोट और दो आधार कार्ड मिले; और सुसाइड नोट को पढ़ने पर, मृत्यु का कारण आवेदक द्वारा मृतक को पहुँचाई गई प्रताड़ना बताया गया था, जबकि मृत्यु का वास्तविक कारण ट्रेन से लगी 'एंटी-मॉर्टम' (मृत्यु-पूर्व) चोटें पाई गईं।

4. जांच के आधार पर, मजिस्ट्रेट की अदालत में एक चार्जशीट पेश की गई, जिसने 22.10.2021 के आदेश द्वारा आईपीसी की धारा 306 के तहत इस मामले का संज्ञान लिया। बाद में, 24.01.2024 के सत्र न्यायालय के आदेश द्वारा उसी धारा के तहत आरोप तय किए गए। इन दोनों आदेशों को इस पुनरीक्षण याचिका में चुनौती दी गई है।

आवेदक की ओर से प्रस्तुत तर्क

5. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने निम्नलिखित तर्क प्रस्तुत किए—

(i). धारा 306 आईपीसी के अंतर्गत आरोप तय किया जाना स्पष्टतः अवैध है, क्योंकि धारा 107 आईपीसी में वर्णित उकसावे के तत्व लागू नहीं होते।

(ii). आत्महत्या-पत्र इस चरण पर भी एक विश्वसनीय साक्ष्य नहीं है, क्योंकि यह नौ अनुच्छेदों में है और प्रथम अनुच्छेद की मात्र दो पंक्तियों के बाद ही मृतक दीन दयाल सिंह द्वारा कथित रूप से किए गए हस्ताक्षर दिखाई देते हैं, किन्तु उसके बाद अतिरिक्त



भाषा जोड़ी गई है, जो स्वयं यह दर्शाती है कि आत्महत्या-पत्र प्रकरण के उद्देश्य से तैयार किया गया था और अभियोजन द्वारा किसी बाद के चरण में स्थापित किया गया;

(iii). बिना स्वीकार किए, केवल यह मानते हुए कि आत्महत्या-पत्र वास्तविक है, उसके अवलोकन से यह स्पष्ट होता है कि मृतक अपनी संपत्ति को अपने परिवार के सदस्यों के बीच बाँटना चाहता था और इसमें कहीं भी यह नहीं दर्शाया गया है कि किस प्रकार आवेदक ने मृतक को आत्महत्या करने के लिए दुष्प्रेरित या उकसाया;

(iv). विधि विज्ञान प्रयोगशाला (एफ.एस.एल.) ने दिनांक 03.08.2021 की अपनी रिपोर्ट में यह दर्शाया कि विवादित हस्ताक्षरों के संतोषजनक परीक्षण के लिए मृतक के कम से कम 10-15 हस्ताक्षरों की आवश्यकता थी और यद्यपि इस संबंध में पत्राचार किया गया, किन्तु आज तक ऐसा कोई विधि विज्ञान परीक्षण प्रतिवेदन अभिलेख पर प्रस्तुत नहीं हुआ है और इस प्रकार धारा 306 भारतीय दण्ड संहिता के अंतर्गत आरोप निर्धारित करने के लिए पर्याप्त साक्ष्य का अभाव था;

(v). आत्महत्या-पत्र के प्रथम अनुच्छेद से यह संकेत मिलता है कि आवेदक तथा मृतक के पिता उसकी मृत्यु के लिए उत्तरदायी थे, जबकि मृतक के पिता की मृत्यु दिनांक 15.12.2019 को, अर्थात् मृत्यु से चार माह पूर्व ही हो चुकी थी, अतः सम्पूर्ण आत्महत्या-पत्र को निरस्त किया जाना चाहिए;

(vi). मृतक की पत्नी नीलम सिंह, जब विवेचना अधिकारी (आई.ओ.) द्वारा संपर्क किया गया, तो उसने दो बार अपना बयान दर्ज कराने से इनकार किया; प्रथम बार दिनांक 15.03.2020 को यह कहते हुए कि वह अपने अधिवक्ता से परामर्श के बाद बयान देगी; द्वितीय बार दिनांक 28.03.2020 को भी वही रुख अपनाया और जब दो माह पश्चात् दिनांक 08.05.2020 को उसका बयान दर्ज किया गया, तब उसने कहा कि यह उसका मृतक के साथ दूसरा विवाह था, जो वर्ष 2011 में सम्पन्न हुआ; उसका प्रथम विवाह आसनसोल निवासी अमित कुमार जगवानी से हुआ था, जिसकी मृत्यु अगरतला में हुई; उसके प्रथम पति से उत्पन्न एक पुत्र है जो देहरादून में कक्षा 12 में अध्ययनरत है; मृतक की प्रथम पत्नी रेखा ग्वालियर में रहती है; मृतक के परिवारजनों ने उसे जबरन



तलाक दिलवाया, जिसमें मुख्य भूमिका आवेदक तथा उसके दिवंगत ससुर कृष्ण बिहारी सिंह की थी, जो पिछले 20 वर्षों से ईंट-भट्ठा चलाते थे, जिसकी समस्त आय आवेदक के पास रहती थी, जिसने अचल संपत्तियाँ अर्जित कर ली थीं; मृतक अपने भाई के कृत्यों से अत्यधिक परेशान होकर आत्महत्या करने को विवश हुआ, जो आत्महत्या-पत्र से सिद्ध होता है, तथा पैतृक संपत्ति के बँटवारे का विवाद लंबित था, जिसमें आवेदक ने सामने की मूल्यवान संपत्ति अपने नाम कर ली थी और कोने की संपत्ति उसके पति के नाम थी, जिसे वह बेच नहीं सका, जिसके परिणामस्वरूप, उसने आत्महत्या कर ली;

(vii). मृत्यु के दिन, अर्थात् 02.03.2020 को, मृतक की पत्नी द्वारा थाना-कोतवाली प्रभारी को दिए गए प्रथम प्रार्थना-पत्र में स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया था कि उसके पति ने अपने व्यापार में भारी हानि होने के कारण आत्महत्या की; उसके परिवार का कोई भी व्यक्ति इसके लिए जिम्मेदार नहीं था और वह किसी के विरुद्ध कोई विधिक कार्यवाही नहीं चाहती थी; अतः यह दर्शाता है कि समय बीतने के साथ परिस्थितियाँ बदलीं और आवेदक को दुर्भावना के कारण झूठा फँसाया गया, किन्तु इन पहलुओं पर अवर न्यायालयों द्वारा विचार नहीं किया गया और उन्होंने संज्ञान लेने तथा आरोप निर्धारित करने में त्रुटि की;

(viii). मृतक की पत्नी द्वारा दायर दीवानी वाद, मूल वाद संख्या 153 सन् 2022, दिनांक 15.09.2022 के आदेश द्वारा वादपत्र अस्वीकृत किए जाने के कारण खारिज किया जा चुका है, जो यह दर्शाता है कि पत्नी द्वारा अधिकारों की घोषणा का दावा दीवानी न्यायालय द्वारा अस्वीकार कर दिया गया;

(ix). आरोप-पत्र विवेचना अधिकारी द्वारा दिनांक 23.10.2021 को प्रस्तुत किया गया, जबकि माननीय मजिस्ट्रेट द्वारा दिनांक 22.10.2021 को, अर्थात् आरोप-पत्र प्रस्तुत होने से एक दिन पूर्व ही संज्ञान ले लिया गया, अतः सम्पूर्ण कार्यवाही दूषित हो जाती है।

6. अपने तर्कों के समर्थन में, आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने निम्नलिखित निर्णयों पर निर्भरता व्यक्त की है:-

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।



- (i). जयेदीपसिंह प्रवीणसिंह चावड़ा एवं अन्य बनाम गुजरात राज्य : (2025) 2 एस.सी.सी. 116;
- (ii). शशिकांत शर्मा एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य : 2024 ए.आई.आर. एस.सी. 193;
- (iii). सतीश मेहरा बनाम दिल्ली प्रशासन एवं अन्य : 1996 एस.सी.सी. (अपराध) 1104;
- (iv). सुरेश उर्फ पप्पू बुधरमल कलानी बनाम महाराष्ट्र राज्य : (2001) 3 एस.सी.सी. 703

राज्य की ओर से प्रस्तुत तर्क

7. *इसके विपरीत*, विद्वान शासकीय अधिवक्ता ने निम्नलिखित तर्क प्रस्तुत किए:-
- (i). आत्महत्या-पत्र इस चरण पर पर्याप्त साक्ष्य है, साथ ही विवेचना के दौरान संकलित गवाहों के बयान यह दर्शाते हैं कि आवेदक द्वारा किया गया उकसावा मृतक को आत्महत्या करने के लिए विवश करने वाला था, अतः ये सभी तथ्य संज्ञान लेने के लिए पर्याप्त थे और इस प्रकार माननीय मजिस्ट्रेट द्वारा कोई त्रुटि नहीं की गई;
- (ii). जहाँ तक आरोप निर्धारित करने के आदेश का प्रश्न है, उस चरण पर न्यायालय द्वारा विस्तृत कारण अभिलेखित करना आवश्यक नहीं होता और गंभीर संदेह के आधार पर भी आरोप निर्धारित किया जा सकता है, अतः उक्त आदेश में भी किसी प्रकार का हस्तक्षेप अपेक्षित नहीं है।
8. अपने तर्कों के समर्थन में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय **दिनेश तिवारी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य : (2014) 13 एस.सी.सी. 137** पर निर्भरता व्यक्त की गई है।

विचार-विमर्श

9. मैंने पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा प्रस्तुत तर्कों पर विचार किया है तथा अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री का अवलोकन किया है।
10. चुनौती के अधीन दो आदेशों में से, दिनांक 24.01.2024 के उस आदेश की वैधता पर, जिसके द्वारा धारा 306 भारतीय दण्ड संहिता के अंतर्गत आरोप निर्धारित किया गया था, जोरदार तर्क प्रस्तुत किए गए, तथापि वाद की सुनवाई पूर्ण होने और निर्णय सुरक्षित रखे जाने

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।



के पश्चात तथा उसके बाद 3-4 अन्य वादों की सुनवाई के उपरांत, आवेदक के विद्वान अधिवक्ता श्री चड्ढा पुनः उपस्थित हुए और यह प्रस्तुत किया कि आरोप निर्धारण के आदेश के अतिरिक्त, दिनांक 22.10.2021 का वह अन्य आदेश, जिसके द्वारा प्रकरण में संज्ञान लिया गया तथा आवेदक को तलब किया गया था, उसे भी चुनौती दी गई है, जिसे पहले उनके द्वारा प्रस्तुत करने में चूक हो गई थी। उक्त आदेश में अवैधता के संबंध में पूछे जाने पर केवल यह तर्क प्रस्तुत किया गया कि आरोप-पत्र में दिनांक 23.10.2021 का एक अनुमोदन अंकित है, जिसमें यह उल्लेख है कि इसे न्यायालय भेजा जाए और, अतः, आरोप-पत्र प्रस्तुत होने से एक दिन पूर्व, अर्थात् 22.10.2021 को संज्ञान नहीं लिया जा सकता था और इस कारण केवल इसी आधार पर संज्ञान लेने का आदेश निरस्त किया जाना चाहिए।

संज्ञान लेने के आदेश को चुनौती:

11. चूँकि संज्ञान लेने का आदेश समय की दृष्टि से पूर्ववर्ती है, अतः सर्वप्रथम न्यायालय, प्रस्तुत तर्कों के आधार पर उस पर की गई चुनौती का परीक्षण करता है। आरोप-पत्र की संलग्न प्रति के पृष्ठ 59-ई, अर्थात् उसके अंतिम पृष्ठ का अवलोकन करने पर निम्नलिखित उल्लेख प्राप्त होता है:-

"आरोपपत्र न्यायालय जाये।

ह0 अ0

दिनांक 23.10.21"

12. यह निर्विवाद है कि मजिस्ट्रेट द्वारा दिनांक 22.10.2021 को संज्ञान लिया गया। यद्यपि यह सत्य है कि संज्ञान केवल आरोप-पत्र के प्रस्तुत होने के पश्चात ही लिया जा सकता है, उससे पूर्व नहीं, तथापि दो तिथियों में अंतर के आधार पर प्रस्तुत किया गया तर्क न्यायालय को स्वीकार्य नहीं है, क्योंकि शपथ-पत्र के परिशिष्ट-10 को आरोप-पत्र की प्रति बताया गया है और शपथ-पत्र के संबंधित अनुच्छेद 18 में यह नहीं दर्शाया गया है कि वह आरोप-पत्र की प्रमाणित प्रति है और न ही उक्त दस्तावेज के साधारण अवलोकन से यह परिलक्षित होता है। वास्तव में, परिशिष्ट-10 आरोप-पत्र की एक अपूर्ण टंकित प्रति है, जिसके साथ उसकी छायाप्रति संलग्न है, जिसमें उसके प्रथम पृष्ठ पर दिनांक 22.10.2021 को संज्ञान लिए जाने का

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।



अनुमोदन अंकित है तथा उसके अंतिम पृष्ठ पर उपरोक्त उद्धृत दिनांक 23.10.2021 का अनुमोदन पाया जाता है।

13. न्यायालय अपनी दृष्टि को इतना अव्यावहारिक नहीं बना सकता कि यह मान ले कि यद्यपि आरोप-पत्र दिनांक 23.10.2021 को प्रस्तुत किया गया, तथापि संबंधित न्यायालय ने उससे एक दिन पूर्व ही उस पर संज्ञान ले लिया। यदि इस प्रकार का तर्क स्वीकार किया जाता है, तो इसका अर्थ यह होगा कि या तो माननीय मजिस्ट्रेट बिना अपने न्यायालय में आरोप-पत्र प्रस्तुत हुए ही पुलिस थाने जाकर प्रकरण में संज्ञान लेने गए या विवेचना अधिकारी ने आरोप-पत्र पर संज्ञान लिए जाने का अनुमोदन प्राप्त करने के पश्चात उसे पुलिस थाने ले जाकर वहाँ के कार्यालय से अगले दिन न्यायालय को भेजे जाने का अनुमोदन अंकित कराया। कार्यवाही के अभिलेख का विश्लेषण करते समय न्यायालय को व्यावहारिक दृष्टिकोण अपनाना होता है और एक दिन की तिथि में अंतर, जब विषय आरोप-पत्र के प्रस्तुत किए जाने तथा उस पर संज्ञान लेने से संबंधित हो, केवल इसी आधार पर संज्ञान आदेश को निरस्त करने के लिए न्यायालय को प्रेरित नहीं करता।

14. इसके अतिरिक्त, तिथियों के संबंध में अंतर के आधार पर संज्ञान आदेश को दी गई चुनौती आधे-अधूरे मन से की गई प्रतीत होती है और यद्यपि पुनरीक्षण प्रार्थना-पत्र के प्रथम तीन आधार ऐसे अंतर पर आधारित उठाए गए हैं, तथापि शपथ-पत्र का अनुच्छेद 18 भी आधे-अधूरे रूप में तैयार किया हुआ प्रतीत होता है। सुविधा हेतु उक्त अनुच्छेद को निम्न प्रकार पुनः उद्धृत किया जाता है:-

“18. कि उपरोक्त साक्ष्यों के आधार पर विवेचना अधिकारी ने विवेचना पूर्ण की और आरोप-पत्र प्रेषित किया तथा क्षेत्राधिकारी ने अपने आदेश दिनांक 23.10.2021 द्वारा उसे न्यायालय में प्रस्तुत करने का निर्देश दिया और माननीय मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट ने अपने आदेश दिनांक 22.10.2021 द्वारा आरोप-पत्र पर संज्ञान ले लिया। आरोप-पत्र की एक प्रति इस शपथ-पत्र के साथ अनुलग्नक संख्या-10 के रूप में संलग्न की जा रही है।”

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।



15. अनुच्छेद 18 के पश्चात, शपथ-पत्र में पुनरीक्षण प्रार्थना-पत्र के प्रथम तीन आधारों में लिए गए कथन के अनुरूप कोई अन्य कथन नहीं किया गया है और शपथकर्ता ने आगे बढ़कर प्रकरण के अन्य पहलुओं, जैसे मृतक की पत्नी के बयान तथा दीवानी/राजस्व कार्यवाहियों आदि का उल्लेख किया है। न्यायालय इस पहलू पर इसलिए ध्यान केंद्रित कर रहा है कि इस न्यायालय द्वारा पारित आदेशों के अनुपालन में शपथ-पत्रों के आदान-प्रदान का निर्देश दिया गया था और शपथ-पत्र के अनुच्छेद 18 में किए गए कथनों का प्रत्युत्तर प्रति-शपथ-पत्र के अनुच्छेद 10 में यह कहते हुए दिया गया है कि “शपथ-पत्र के अनुच्छेद 18 की सामग्री अभिलेख का विषय है, अतः उस पर कोई टिप्पणी आवश्यक नहीं है।” यद्यपि आरोप-पत्र के दिनांक 23.10.2021 को प्रेषित किए जाने तथा माननीय मजिस्ट्रेट द्वारा दिनांक 22.10.2021 को संज्ञान लिए जाने के तथ्य को अभिलेख का विषय बताते हुए उत्तर दिया गया है, किन्तु उक्त दोनों तिथियों के आधार पर आदेश को चुनौती देने के लिए कोई विशेष बल नहीं दिया गया है, अतः न्यायालय इस आधार पर चुनौती स्वीकार करने की स्थिति में नहीं है और यह निष्कर्ष निकालता है कि दिनांक 23.10.2021 को क्षेत्राधिकारी द्वारा किया गया अनुमोदन मात्र तिथि लिखने में मानवीय त्रुटि है। इस दृष्टिकोण से, दिनांक 22.10.2021 का संज्ञान आदेश हस्तक्षेप योग्य नहीं है और इस संबंध में की गई चुनौती निरस्त की जाती है।

आरोप निर्धारित करने के आदेश को चुनौती:

क. विधिक स्थिति:

16. आरोप निर्धारित करने के आदेश के विरुद्ध की गई मुख्य चुनौती पर विचार करते हुए, सर्वप्रथम न्यायालय यह उल्लेख करना उचित समझता है कि चूँकि यह वाद सत्र न्यायालय द्वारा विचारणीय है, अतः दण्ड प्रक्रिया संहिता का अध्याय XVIII लागू होगा और प्रकरण के प्रयोजन हेतु उक्त अध्याय की धाराएँ 227 एवं 228 का पुनरुत्पादन आवश्यक है। वे निम्नलिखित रूप में उद्धृत हैं:-

“227. आरोपमुक्ति।

- यदि प्रकरण के अभिलेख तथा उसके साथ प्रस्तुत दस्तावेजों पर विचार करने के पश्चात तथा इस संबंध में अभियुक्त और अभियोजन के तर्कों को सुनने के बाद

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।



न्यायाधीश यह मानता है कि अभियुक्त के विरुद्ध कार्यवाही करने के लिए पर्याप्त आधार नहीं है, तो वह अभियुक्त को आरोपमुक्त करेगा और ऐसा करने के कारण अभिलेखित करेगा।

228. आरोप का निर्धारण - (1) यदि उपरोक्त प्रकार के विचार एवं सुनवाई के पश्चात न्यायाधीश का यह मत है कि यह अनुमान करने का आधार है कि अभियुक्त ने ऐसा अपराध किया है जो—

(ए) सत्र न्यायालय द्वारा विशिष्ट रूप से विचारणीय नहीं है, तो वह अभियुक्त के विरुद्ध आरोप निर्धारित कर सकता है और आदेश द्वारा वाद को विचारण हेतु मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट [या किसी अन्य प्रथम श्रेणी के न्यायिक मजिस्ट्रेट को स्थानान्तरित कर सकता है तथा अभियुक्त को निर्देश दे सकता है कि वह मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट अथवा, जैसा भी प्रकरण हो, प्रथम श्रेणी के न्यायिक मजिस्ट्रेट के समक्ष, जिस तिथि को वह उचित समझे, उपस्थित हो, और तत्पश्चात ऐसा मजिस्ट्रेट] पुलिस रिपोर्ट पर स्थापित वारंट वादों के विचारण की प्रक्रिया के अनुसार अपराध का विचारण करेगा;

(बी) सत्र न्यायालय द्वारा विशिष्ट रूप से विचारणीय है, तो वह अभियुक्त के विरुद्ध लिखित रूप में आरोप निर्धारित करेगा।

(2) जहाँ न्यायाधीश उपधारा (1) के खण्ड (बी) के अंतर्गत कोई आरोप निर्धारित करता है, वहाँ आरोप अभियुक्त को पढ़कर सुनाया जाएगा और समझाया जाएगा तथा अभियुक्त से पूछा जाएगा कि क्या वह आरोपित अपराध के लिए दोष स्वीकार करता है या विचारण की मांग करता है।”

(न्यायालय द्वारा बल दिया गया)

17. धारा 227 का साधारण अवलोकन यह दर्शाता है कि यदि प्रकरण के अभिलेख तथा उसके साथ प्रस्तुत दस्तावेजों पर विचार करने के पश्चात और इस संबंध में अभियुक्त तथा अभियोजन के तर्कों को सुनने के बाद न्यायाधीश यह मानता है कि अभियुक्त के विरुद्ध कार्यवाही करने के लिए पर्याप्त आधार नहीं है, तो वह अभियुक्त को आरोपमुक्त करेगा और ऐसा करने के कारण

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।



अभिलेखित करेगा। एक बार न्यायाधीश धारा 227 के अंतर्गत अभियुक्त को आरोपमुक्त कर देता है, तो मामला वहीं समाप्त हो जाता है और धारा 228 के अंतर्गत आरोप निर्धारण का अगला चरण उत्पन्न नहीं होता; किन्तु यदि अभिलेख पर विचार तथा अभियुक्त एवं अभियोजन को सुनने के पश्चात न्यायाधीश का यह मत है कि यह अनुमान करने का आधार है कि अभियुक्त ने अपराध किया है, तो वह विधि द्वारा निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार उसका विचारण करेगा।

(न्यायालय द्वारा बल दिया गया)

18. धाराओं 227 एवं 228 में प्रयुक्त भाषा स्पष्ट और निर्विवाद है। जहाँ धारा 227 के अंतर्गत अभियुक्त को आरोपमुक्त करते समय कारण अभिलेखित करना आवश्यक है, वहीं धारा 228 न्यायाधीश से आरोप निर्धारित करते समय कारण अभिलेखित करने की अपेक्षा नहीं करती; बल्कि उस चरण पर उसके लिए यह पर्याप्त है कि यह अनुमान करने का आधार हो कि अपराध किया गया है। धारा 228 में प्रयुक्त शब्द “अनुमान” से यह निष्कर्ष निकलता है कि आरोप अनुमान के आधार पर निर्धारित किया जा सकता है, न कि ठोस आधार पर, जो कि अभियुक्त को आरोपमुक्त करने या न करने अथवा दोषसिद्धि या दोषमुक्ति के लिए आवश्यक हो सकता है।

(न्यायालय द्वारा बल दिया गया)

19. इस चरण पर, न्यायालय की शक्तियाँ तथा आरोप निर्धारण की विधिक आवश्यकताओं और उससे संबंधित पहलुओं पर कुछ निर्णयों का उल्लेख करना आवश्यक है।

20. **बिहार राज्य बनाम रमेश सिंह : (1977) 4 एस.सी.सी. 39** में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा यह प्रतिपादित किया गया है कि आरोप निर्धारण के चरण पर यह देखना आवश्यक नहीं है कि अभियुक्त के दोषसिद्ध होने के लिए पर्याप्त आधार है या विचारण उसके दोषसिद्धि पर समाप्त होना सुनिश्चित है और यदि ऐसा प्रबल संदेह है जिससे न्यायालय को यह प्रतीत होता है कि यह अनुमान करने का आधार है कि अभियुक्त ने अपराध किया है, तो न्यायालय के लिए यह कहना उचित नहीं है कि उसके विरुद्ध कार्यवाही करने के लिए पर्याप्त आधार नहीं है।

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।



21. **अमित कपूर बनाम रमेश चंदर एवं अन्य : (2012) 9 एस.सी.सी. 460** में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने दण्ड प्रक्रिया संहिता की धाराओं 227 और 228 के बीच अंतर स्पष्ट किया और यह कहा कि आरोप का निर्धारण, संहिता की धारा 228 के अंतर्गत, विचारण न्यायालय द्वारा अधिकार क्षेत्र का प्रयोग है, जब तक कि अभियुक्त को धारा 227 के अंतर्गत आरोपमुक्त न कर दिया जाए। इन दोनों प्रावधानों के अंतर्गत न्यायालय को 'प्रकरण के अभिलेख' तथा उसके साथ प्रस्तुत दस्तावेजों पर विचार करना होता है और पक्षकारों को सुनने के पश्चात या तो अभियुक्त को आरोपमुक्त किया जा सकता है अथवा यदि न्यायालय को ऐसा प्रतीत होता है और उसकी राय में यह अनुमान करने का आधार है कि अभियुक्त ने अपराध किया है, तो वह आरोप निर्धारित करेगा।

(न्यायालय द्वारा बल दिया गया)

22. आगे यह भी प्रतिपादित किया गया है कि संहिता की धाराओं 227 और 228 की भाषा में सूक्ष्म अंतर है। धारा 227 न्यायालय की एक निश्चित राय और निर्णय को व्यक्त करती है, जबकि धारा 228 एक प्रारंभिक राय है। अतः यह कहना कि आरोप निर्धारण के चरण पर न्यायालय को यह राय बनानी चाहिए कि अभियुक्त ने निश्चित रूप से अपराध किया है, संहिता की धारा 228 के अनुसार अनुमेय नहीं है। आरोप निर्धारण के प्रारंभिक चरण पर न्यायालय का ध्यान प्रमाण पर नहीं, बल्कि इस बात पर होता है कि अभियुक्त द्वारा अपराध किए जाने का प्रबल संदेह है, जो विचारण के लिए प्रस्तुत किए जाने पर उसके दोषसिद्ध होने की संभावना दर्शाता है। न्यायालय को केवल यह देखना होता है कि अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री और तथ्य अभियुक्त की निर्दोषता के अनुकूल हैं या नहीं।

(न्यायालय द्वारा बल दिया गया)

23. **अमित कपूर (उपरोक्त)** के प्रकरण में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा व्यक्त विचार को **दिनेश तिवारी (उपरोक्त)** में पुनः दोहराया गया और उसकी पुष्टि की गई।

24. **कांती भद्र शाह बनाम पश्चिम बंगाल राज्य : (2000) 1 एस.सी.सी. 722** में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने यह प्रतिपादित किया है कि न्यायाधीश को कारण केवल तब अभिलेखित करने होते हैं जब वह अभियुक्त को आरोपमुक्त करने का निर्णय करता है, किन्तु यदि वह

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।



आरोप निर्धारित करता है, तो वह बिना कारण अभिलेखित किए भी ऐसा कर सकता है कि उसने आरोप क्यों निर्धारित किया।

ख. आत्महत्या-पत्र:

25. उपरोक्त विधिक स्थिति के परिप्रेक्ष्य में, जब वर्तमान वाद के अभिलेख का अवलोकन किया जाता है, तो यह स्पष्ट होता है कि अभियोजन द्वारा जिस मुख्य दस्तावेज पर निर्भर किया गया है, वह हस्तलिखित आत्महत्या-पत्र है, यद्यपि उसे आवेदक द्वारा विवादित किया गया है। उक्त आत्महत्या-पत्र से यह संकेत मिलता है कि आवेदक तथा मृतक के पिता उसकी मृत्यु के लिए उत्तरदायी थे। आत्महत्या-पत्र के प्रथम अनुच्छेद में निहित इस कथन पर कथित रूप से मृतक के हस्ताक्षर हैं। आत्महत्या-पत्र के आगे के अनुच्छेदों में मृतक द्वारा अपनी संपत्ति को अपने परिवार के सदस्यों के बीच विभाजित करने की इच्छा तथा आत्महत्या करने से पूर्व उसके द्वारा व्यक्त अन्य भावनाओं का उल्लेख किया गया है।

26. यद्यपि यह जोरदार तर्क प्रस्तुत किए गए हैं कि चूँकि प्रथम अनुच्छेद, जिसमें दो पंक्तियाँ हैं, के तुरंत पश्चात आत्महत्या-पत्र पर कथित रूप से मृतक द्वारा हस्ताक्षर किए गए हैं, तथापि यह मात्र तथ्य इस चरण पर आत्महत्या-पत्र के अनुच्छेद संख्या 2 से 9 तक को त्यागने के लिए निर्णायक नहीं हो सकता, विशेषकर तब जबकि 9वें अनुच्छेद के पश्चात भी कथित रूप से मृतक के हस्ताक्षर पाए जाते हैं। न्यायालय इस चरण पर यह अनुमान नहीं लगा सकता कि प्रथम अनुच्छेद के अंत में हस्ताक्षर करने के पश्चात मृतक द्वारा आगे कोई लेखन नहीं किया जा सकता था और यह भी संभव है कि प्रथम अनुच्छेद मृतक द्वारा लिखा और हस्ताक्षरित किया गया हो, परन्तु किसी बाद के समय पर शेष अनुच्छेद लिखे और हस्ताक्षरित किए गए हों। मृतक के पिता की मृत्यु दिनांक 15.12.2019 को हुई थी, यह तथ्य भी इस चरण पर आत्महत्या-पत्र को त्यागने के लिए पर्याप्त नहीं हो सकता और यह भी संभव है कि प्रथम अनुच्छेद उस समय लिखा गया हो जब मृतक के पिता जीवित थे और आत्महत्या-पत्र मृतक द्वारा अपने पास रखा गया हो तथा शेष अनुच्छेद पिता की मृत्यु के पश्चात लिखे गए हों या सम्पूर्ण आत्महत्या-पत्र पिता की मृत्यु के पश्चात लिखा गया हो, किन्तु उसमें उन्हें मृतक की मृत्यु के लिए उत्तरदायी दर्शाया गया हो।

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।



27. उपरोक्त टिप्पणियाँ इस कारण की जा रही हैं कि आत्महत्या-पत्र पर यह उल्लेख नहीं है कि उसे कब लिखा या हस्ताक्षरित किया गया था और केवल इस आधार पर कि वह मृतक के शव के 02.03.2020 को प्राप्त होने के समय उसकी पैंट की बाईं जेब से मिला, यह नहीं कहा जा सकता कि आत्महत्या-पत्र उसी दिन लिखा गया था। इस संबंध में इस न्यायालय द्वारा और कोई टिप्पणी करना आवश्यक नहीं है, अन्यथा विचारण प्रभावित हो सकता है, तथापि ये टिप्पणियाँ केवल इस कारण की गई हैं कि आत्महत्या-पत्र की वैधता/प्रामाणिकता को उसके कथनों और हस्ताक्षरों के आधार पर जोरदार रूप से चुनौती दी गई थी।

28. चूँकि दिनांक 03.08.2021 की एफ.एस.एल. रिपोर्ट के संबंध में तर्क प्रस्तुत किए गए थे, न्यायालय उक्त रिपोर्ट में यह पाता है कि आत्महत्या-पत्र पर लेखन तथा हस्ताक्षर विवादित थे और मृतक के लेखन के नमूने के रूप में एक फटी हुई कॉपी एफ.एस.एल. को भेजी गई थी, तथापि एफ.एस.एल. ने यह निष्कर्ष निकाला कि मृतक का हस्तलेखन दोनों दस्तावेजों, अर्थात् आत्महत्या-पत्र तथा कॉपी, से मेल खाता है, परन्तु विवादित हस्ताक्षरों के संतोषजनक परीक्षण के लिए पर्याप्त संख्या में, कम से कम 10 से 15 हस्ताक्षरों की आवश्यकता है। यह मानते हुए कि आरोप निर्धारण के समय तक कोई अन्य एफ.एस.एल. रिपोर्ट अभिलेख पर प्रस्तुत नहीं हुई, यह मात्र तथ्य इस चरण पर आत्महत्या-पत्र को पूर्णतः त्यागने के लिए पर्याप्त नहीं है, विशेषकर तब जब एफ.एस.एल. का यह अवलोकन है कि दोनों दस्तावेजों पर मृतक का हस्तलेखन मेल खाता है।

29. न्यायालय अभिलेख पर दिनांक 27.06.2020 की एक अन्य रिपोर्ट भी पाता है, जो शपथ-पत्र के परिशिष्ट-4 का भाग है। उक्त रिपोर्ट श्री आर.के. जायसवाल, अधिवक्ता द्वारा तैयार की गई है, जिन्होंने स्वयं को हस्तलेखन एवं अंगुलि-छाप विशेषज्ञ (विधि विज्ञान विशेषज्ञ) बताया है। उक्त रिपोर्ट कथित रूप से मृतक की माता श्रीमती धनवंती देवी के समक्ष प्रस्तुत की गई है और उसमें स्पष्ट रूप से यह अंकित है कि विवादित लेखन की संरचना और विन्यास भिन्न हैं और वे स्वीकृत लेखन के लेखक द्वारा लिखे गए नहीं हैं।

30. इस मामले में प्रथम सूचना रिपोर्ट 02.03.2020 को दर्ज की गई थी और संज्ञान 22.10.2021 को लिया गया था। यह स्पष्ट नहीं है कि हस्ताक्षर (स्वीकृत/विवादित) कब और



किसके द्वारा श्री आर.के. जायसवाल, अधिवक्ता को उनकी रिपोर्ट प्रस्तुत करने हेतु भेजे गए। दूसरी ओर, दिनांक 03.08.2021 की एफ.एस.एल. रिपोर्ट से संकेत मिलता है कि दस्तावेज़ 01.03.2021 को कॉन्स्टेबल नवीन कुमार गौतम द्वारा एफ.एस.एल. को भेजे गए थे और दिनांक 03.08.2021 की रिपोर्ट, जो केस डायरी का हिस्सा है, के आधार पर संज्ञान 24.01.2024 को लिया गया।

31. उपरोक्त के दृष्टिगत, परस्पर विरोधी रिपोर्टें होने के कारण—एक अभियोजन द्वारा उठाए गए कदमों के अनुसरण में प्रस्तुत की गई है, जबकि दूसरी इसके विपरीत है, परंतु यह इंगित नहीं करती कि वह कब और कैसे प्रकाश में आई तथा क्या वह केस डायरी का हिस्सा है या नहीं—इस चरण पर मृतक के हस्तलेख एवं हस्ताक्षरों के संदर्भ में आत्महत्या-पत्र की वैधता के संबंध में कोई निश्चित मत व्यक्त नहीं किया जा सकता। यह विचारण न्यायालय का कार्य है कि वह विचारण के दौरान उसके समक्ष प्रस्तुत दस्तावेजी एवं मौखिक साक्ष्यों के आधार पर निष्कर्ष दर्ज करे, अतः एफ.एस.एल. रिपोर्ट के आधार पर किए गए सभी तर्क आरोप निर्धारण के आदेश को निरस्त करने के लिए पर्याप्त नहीं पाए जाते हैं।

सी. आवेदक की ओर से उद्धृत निर्णय:

32. जयेदीपसिंह प्रवीणसिंह चावड़ा (उपरोक्त) के मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने धारा 306 भा.दं.सं. को धारा 107 भा.दं.सं. के साथ पढ़ते हुए विचार किया और यह माना कि धारा 306 भा.दं.सं. के अंतर्गत किसी मामले को लाने के लिए यह अनिवार्य है कि अभियुक्त ने अपने कृत्य द्वारा मृतक को आत्महत्या करने के लिए उकसाने का आशय रखा हो और अभियोजन को यह स्थापित करना होगा कि अभियुक्त ने आत्महत्या के कृत्य में योगदान दिया, तथा यह भी कि उक्त संलिप्तता धारा 107 भा.दं.सं. में उल्लिखित तीन में से किसी एक शर्त को पूरा करती हो। संदर्भ की सुविधा हेतु निर्णय के पैरा 21, 22 और 27 का पुनरुत्पादन आवश्यक है, जो निम्नवत उद्धृत हैं:-

“21. धारा 306 भा.दं.सं. आत्महत्या के दुष्प्रेरण के अपराध के लिए दंड का प्रावधान करती है। इसे धारा 107 भा.दं.सं. के साथ पढ़ा जाना चाहिए, जो ‘दुष्प्रेरण’ के कृत्य को परिभाषित करती है। प्रावधान इस प्रकार हैं:

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।



"306. आत्महत्या का दुष्प्रेरण—यदि कोई व्यक्ति आत्महत्या करता है, तो जो कोई ऐसी आत्महत्या के किए जाने का दुष्प्रेरण करता है, उसे किसी भी प्रकार के कारावास से, जिसकी अवधि दस वर्ष तक हो सकती है, दंडित किया जाएगा और वह जुर्माने के लिए भी दायी होगा।"

"107. किसी कार्य का दुष्प्रेरण—कोई व्यक्ति किसी कार्य के किए जाने का दुष्प्रेरण करता है, यदि वह—

प्रथम.— किसी व्यक्ति को उस कार्य को करने के लिए उकसाता है; या

द्वितीय.— एक या अधिक अन्य व्यक्तियों के साथ उस कार्य को करने के लिए किसी षड्यंत्र में सम्मिलित होता है, यदि उस षड्यंत्र के अनुसरण में और उस कार्य को करने के उद्देश्य से कोई कार्य या अवैध उपेक्षा होती है; या

तृतीय.— किसी कार्य या अवैध उपेक्षा द्वारा, जानबूझकर उस कार्य के किए जाने में सहायता करता है।

व्याख्या 1.— जो व्यक्ति किसी भौतिक तथ्य, जिसे वह प्रकट करने के लिए बाध्य है, का जानबूझकर मिथ्या निरूपण या जानबूझकर गोपनीयकरण करके, स्वेच्छा से किसी कार्य को कराता है या कराने का प्रयत्न करता है, वह उस कार्य के किए जाने के लिए उकसाने वाला माना जाता है।

व्याख्या 2.— जो कोई, किसी कार्य के किए जाने से पूर्व या उस समय, उस कार्य के किए जाने को सुगम बनाने के उद्देश्य से कुछ करता है और इस प्रकार उसके किए जाने को सुगम बनाता है, वह उस कार्य के किए जाने में सहायता करने वाला कहा जाता है।"

22. धारा 306 भा.दं.सं. उन व्यक्तियों को दंडित करती है जो किसी अन्य द्वारा आत्महत्या के कृत्य का दुष्प्रेरण करते हैं। किसी व्यक्ति पर इस धारा के अंतर्गत आरोप स्थापित करने के लिए अभियोजन को यह सिद्ध करना होगा कि अभियुक्त ने मृतक द्वारा आत्महत्या के कृत्य में योगदान दिया। यह संलिप्तता धारा 107 भा.दं.सं. में उल्लिखित तीन में से किसी एक शर्त को पूरा करनी चाहिए। इन शर्तों में यह शामिल है



कि अभियुक्त ने व्यक्ति को आत्महत्या करने के लिए उकसाया या प्रोत्साहित किया, या दूसरों के साथ षड्यंत्र करके यह सुनिश्चित किया कि वह कृत्य संपन्न हो, अथवा ऐसा आचरण किया (या करने से विरत रहा) जिससे सीधे तौर पर व्यक्ति ने अपना जीवन समाप्त कर लिया।

27. अतः इस प्रावधान के अंतर्गत किसी मामले को लाने के लिए यह अनिवार्य है कि अभियुक्त ने अपने कृत्य द्वारा मृतक को आत्महत्या करने के लिए उकसाने का आशय रखा हो। इस प्रकार, पत्नी की मृत्यु के मामलों में न्यायालय को मामले के तथ्यों और परिस्थितियों का सूक्ष्म परीक्षण करना चाहिए, साथ ही प्रस्तुत साक्ष्यों का मूल्यांकन करना चाहिए। यह निर्धारित करना आवश्यक है कि क्या पीड़िता पर की गई क्रूरता या उत्पीड़न ने उसे जीवन समाप्त करने के अतिरिक्त कोई विकल्प नहीं छोड़ा। आत्महत्या के कथित दुष्प्रेरण के मामलों में, ऐसे प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष उकसावे के ठोस प्रमाण होने चाहिए, जिनके कारण आत्महत्या हुई हो। मात्र उत्पीड़न के आरोप दोष सिद्ध करने के लिए पर्याप्त नहीं हैं। दोषसिद्धि के लिए यह आवश्यक है कि अभियुक्त द्वारा किया गया कोई सकारात्मक कृत्य, जो घटना के समय के निकट हो, ऐसा हो जिसने पीड़ित को आत्महत्या करने के लिए विवश या प्रेरित किया हो।”

33. माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा धारा 306/107 भारतीय दंड संहिता के अंतर्गत आवश्यकताओं के संबंध में स्थापित किए गए सिद्धांत के साथ कोई विवाद नहीं है, और न ही हो सकता है। तथापि, यहाँ यह महत्वपूर्ण है कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष जो मामला आया था, वह ऐसी स्थिति से उत्पन्न हुआ था जहाँ विचारण न्यायालय ने अभियुक्त को दोषमुक्त करने से इंकार कर दिया था और उक्त आदेश के विरुद्ध दायर पुनरीक्षण याचिका उच्च न्यायालय द्वारा खारिज कर दी गई थी। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री का परीक्षण किया, जिसमें धारा 306, 498-A और 114 भारतीय दंड संहिता के अंतर्गत लगाए गए आरोप शामिल थे, और तथ्यों का प्रावधानों के आलोक में विश्लेषण करने के पश्चात यह पाया कि धारा 306 भारतीय दंड संहिता के अंतर्गत अपराध के तत्व प्रारंभिक



विश्लेषण में भी स्थापित नहीं होते हैं, और इसलिए माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अभियुक्त को दोषमुक्त कर दिया गया।

34. वर्तमान मामला एक भिन्न चरण से उत्पन्न होता है, जहाँ पुनरीक्षण में आवेदक को दोषमुक्त करने या न करने का प्रश्न इस न्यायालय के समक्ष नहीं है, अर्थात् यह न्यायालय दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 227 के अंतर्गत पारित आदेश की वैधता की जांच नहीं कर रहा है, बल्कि धारा 228 दंड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत आरोप निर्धारित करने के आदेश को चुनौती का परीक्षण कर रहा है। अतः, अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री के आलोक में चुनौती की जांच के मानदंड भिन्न होने के कारण, जैसा कि ऊपर **रमेश सिंह** (उपरोक्त), **अमित कपूर** (उपरोक्त), **दिनेश तिवारी** (उपरोक्त) और **कांति भद्र शाह** (उपरोक्त) के मामलों के निर्णयों का संदर्भ देते हुए पहले ही चर्चा की जा चुकी है, आवेदक को **जयेदीपसिंह प्रवीणसिंह चावड़ा** (उपरोक्त) के निर्णय का लाभ प्राप्त नहीं होता है।

35. आवेदक द्वारा जिस अगले निर्णय, **सुरेश @ पप्पू भूधरमल कलानी** (उपरोक्त) के मामले पर भरोसा किया गया है, वह धारा 227/228 के चरण से संबंधित है और निर्णय के अनुच्छेद 9 में स्पष्ट रूप से यह कहा गया है कि न्यायालय सीमित उद्देश्य के लिए साक्ष्य का परीक्षण कर सकता है, और प्रारंभिक चरण में यह अपेक्षित नहीं है कि अभियोजन जो कुछ कहता है उसे अक्षरशः सत्य मान लिया जाए, विशेषकर जब वह सामान्य समझ या मामले की व्यापक संभावनाओं के विपरीत हो। अतः, आरोप निर्धारण के चरण पर न्यायालय को उपलब्ध सामग्री का परीक्षण इस दृष्टि से करना होता है कि क्या यह मानने का आधार है कि अभियुक्त ने अपराध किया है या उसके विरुद्ध कार्यवाही करने के लिए पर्याप्त आधार नहीं है, न कि इस उद्देश्य से कि यह निष्कर्ष निकाला जाए कि इससे दोषसिद्धि होने की संभावना नहीं है। इस प्रकार, **सुरेश @ पप्पू भूधरमल कलानी** (उपरोक्त) के मामले का निर्णय आवेदक के पक्ष में नहीं, बल्कि उसके विरुद्ध पढ़ा जाएगा, क्योंकि आरोप निर्धारण के चरण पर अपराध के घटित होने की केवल एक अनुमान ही पर्याप्त है, न कि दोषसिद्धि या दोषमुक्ति के निष्कर्ष तक पहुँचने के लिए।

(न्यायालय द्वारा बल दिया गया)

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।



36. **शशिकांत शर्मा** (उपरोक्त) का मामला ऐसा था जिसमें अभियुक्त द्वारा दायर दोषमुक्ति का आवेदन विशेष न्यायाधीश (एससी/एसटी अधिनियम) द्वारा खारिज कर दिया गया था और उक्त आदेश को चुनौती देने वाली आपराधिक अपील उच्च न्यायालय द्वारा भी निरस्त कर दी गई थी, जिसके पश्चात मामला माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष गया। ऐसी तथ्यात्मक परिस्थिति में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा यह अवलोकन किया गया कि न्यायालय को साक्ष्य का सूक्ष्म मूल्यांकन करने की आवश्यकता नहीं होती है और आरोप तय करने के लिए गंभीर संदेह भी पर्याप्त है, तथापि, अनेक निर्णयों की एक लंबी श्रृंखला यह भी स्थापित करती है कि यदि अभियोजन के स्वीकृत साक्ष्य, जैसा कि विवेचना अधिकारी द्वारा दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 173 के अंतर्गत प्रस्तुत रिपोर्ट में संलग्न दस्तावेजों से परिलक्षित होता है, से किसी अपराध के आवश्यक तत्व सिद्ध नहीं होते हैं, तो न्यायालय अभियुक्त के विरुद्ध ऐसे अपराध के लिए आरोप निर्धारित करने के लिए बाध्य नहीं है।

37. यद्यपि माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा **सुरेश @ पप्पू भूधरमल कलानी** (उपरोक्त) के निर्णय का संदर्भ दिया गया था, तथापि अवलोकन इस आशय के थे कि यदि किसी अपराध के आवश्यक तत्वों का अभाव हो तो न्यायालय आरोप निर्धारित करने के लिए बाध्य नहीं होगा। किंतु वर्तमान मामले में, जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है, आत्महत्या-पत्र पर हस्तलेखन के मिलान के संबंध में प्रथम दृष्टया राय, मृतक की विधवा के कथन के साथ पढ़ी जाने पर, आत्महत्या-पत्र की सामग्री सहित, अभिलेख पर उपलब्ध संपूर्ण सामग्री के विश्लेषण की आवश्यकता उत्पन्न करती है, ताकि यह जांचा जा सके कि क्या वर्तमान मामला भारतीय दंड संहिता की धारा 107 में निहित तीनों में से किसी एक उपबंध—अर्थात् प्रथम, द्वितीय या तृतीय—सहित स्पष्टीकरण (1) और (2) के अंतर्गत आता है या नहीं, जिससे यह निर्धारित किया जा सके कि क्या आवेदक ने धारा 306 भारतीय दंड संहिता के अंतर्गत दंडनीय अपराध किया है। जब न्यायालय को आरोप निर्धारित करते समय विस्तृत कारण दर्ज करने की आवश्यकता नहीं होती है, तब इस चरण पर यह नहीं कहा जा सकता कि वर्तमान मामले में कोई आरोप निर्धारित नहीं किया जा सकता। यह पूर्णतः भिन्न विषय हो सकता है कि अंततः आवेदक

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।



दोषसिद्ध होगा या दोषमुक्त, अथवा अभियोजन आरोप सिद्ध करने में सफल होगा या असफल।

38. सतीश मेहरा (उपरोक्त) के मामले में, अलामोहन दास बनाम पश्चिम बंगाल राज्य: (एआईआर) 1970 एससी 863 तथा भारत संघ बनाम प्रोफुल्ला कुमार सामल और अन्य : (1979) 3 एससीसी 4 के निर्णयों का संदर्भ देते हुए, माननीय माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा यह टिप्पणी की गई कि यह जांच करने का कार्य है कि क्या अभियुक्त के विरुद्ध प्रथमदृष्टया मामला बनता है या नहीं, और प्रथमदृष्टया मामले का निर्धारण करने की कसौटी स्वाभाविक रूप से प्रत्येक मामले के तथ्यों पर निर्भर करेगी तथा सार्वभौमिक रूप से लागू होने वाला कोई नियम निर्धारित करना कठिन है। आगे यह भी कहा गया कि यदि न्यायाधीश इस बात से संतुष्ट हो कि प्रस्तुत साक्ष्य कुछ संदेह उत्पन्न करता है, परंतु गंभीर संदेह नहीं, तो वह अभियुक्त को मुक्त (डिस्चार्ज) करने के अपने अधिकार के भीतर पूर्णतः होगा, और साथ ही न्यायालय ने यह भी सावधानी बरती कि इस चरण पर मामले के पक्ष-विपक्ष में साक्ष्यों का ऐसा परीक्षण करते हुए विस्तृत जांच (रोविंग इन्क्वायरी) करना, मानो वह विचारण (ट्रायल) चला रहा हो, अपेक्षित नहीं है और न ही उचित है।

(न्यायालय द्वारा बल दिया गया)

39. उपरोक्त माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा की गई टिप्पणियों के आलोक में, यह न्यायालय इस मत का है कि संदेह/गंभीर संदेह/प्रत्याशा विद्यमान थी, जिसके कारण न्यायालय को धारा 306 भारतीय दंड संहिता के अंतर्गत आरोप तय करना आवश्यक था, और इसलिए, उपरोक्त संदर्भित न्यायिक निर्णयों को ध्यान में रखते हुए, यह नहीं कहा जा सकता कि माननीय सत्र न्यायालय द्वारा आरोप निर्धारण में कोई त्रुटि है।

40. जहां तक इस तथ्य का संबंध है कि मृतक की विधवा ने दो बार अपना बयान दर्ज कराने से इनकार किया और तत्पश्चात वही दर्ज कराया तथा एक या दूसरे रूप में बातें कहीं, यह इस चरण पर प्रासंगिक नहीं है और इसका परीक्षण विचारण (ट्रायल) के दौरान किया जाना अपेक्षित है, जब जांच के दौरान दर्ज किए गए बयानों की पुष्टि/अपुष्टि अन्य साक्ष्यों द्वारा की जानी होगी। अतः यह इस चरण पर आवेदक के पक्ष में कोई महत्वपूर्ण पहलू नहीं है और इस आधार

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।



पर प्रस्तुत तर्क भी अस्वीकृत किया जाता है। इसी प्रकार, 02.03.2020 दिनांकित प्रारंभिक प्रार्थना-पत्र, जो विधवा द्वारा प्रभारी थाना-कोतवाली के समक्ष प्रस्तुत किया गया था, के संबंध में भी यही स्थिति है, और यह विचारण न्यायालय का दायित्व होगा कि वह विधवा का परीक्षण करे तथा उस पहलू पर उसका प्रतिपरीक्षण (क्रॉस-एग्जामिनेशन) करने की अनुमति दे और तत्पश्चात किसी एक निष्कर्ष पर पहुंचे।

41. उपरोक्त सभी कारणों से, यह न्यायालय दिनांक 22.10.2021 तथा 24.01.2024 के आदेशों में कोई त्रुटि नहीं पाता है।

42. यह पुनरीक्षण याचिका गुणहीन है और तदनुसार **निरस्त** की जाती है। दिनांक 18.12.2025 का अंतरिम आदेश **निरस्त** किया जाता है।

43. यह स्पष्ट किया जाता है कि इस निर्णय में की गई कोई भी टिप्पणी केवल उस चरण तक सीमित है, जहां संज्ञान ग्रहण करने के आदेश तथा आरोप निर्धारण के आदेश को चुनौती का परीक्षण किया जा रहा है, और इसे पूरे मामले के गुण-दोष पर किसी भी प्रकार की अभिमत की अभिव्यक्ति के रूप में नहीं माना जाएगा, जिसका अंतिम निर्णय विचारण न्यायालय द्वारा विचारण के दौरान ही किया जाएगा।

(क्षितिज शैलेन्द्र, न्यायमूर्ति)

7 जनवरी, 2026

ज्योत्सना



Translated Version. Not For Legal Use.

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।